International Journal of Advance and Applied Research
www.ijaar.co.in
ISSN – 2347-7075 Impact Factor – 7.328
Peer Reviewed Bi-Monthly
Vol.10 No.2 November – December 2022

नई सदी का यथार्थ: इक्कीसवीं सदी के परिवेश के विशेष संदर्भ में

डॉ. प्रकाश विष्णु कांबळे
हिंदी विभाग,
महावीर महाविद्यालय, कोल्हापुर
Corresponding Author - डॉ. प्रकाश विष्णु कांबळे
DOI - 10.5281/zenodo.20648332

शोध सार:

इक्कीसवीं सदी परिवर्तनों की सदी है। एक ओर विज्ञान और तकनीक ने मानव जीवन को अत्यंत सुगम बनाया है, वहीं दूसरी ओर एक नया जटिल यथार्थ भी पैदा किया है। इस सदी को यथार्थ रूप से समझने के लिए इसके सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिवेश को समझना आवश्यक है। यह सदी अर्थ और राजनीति से प्रभावित है। अर्थ से प्रभावित इस सदी ने एक ऐसी संस्कृति को जन्म दिया है जहाँ मानवीय संवेदनाओं का स्थान बाज़ारवाद ने ले लिया है। आज व्यक्ति की पहचान उसके विचारों से नहीं, बल्कि उसकी क्रय-शक्ति से तय हो रही है। राजनीति इस हद तक अपने तत्त्वों से गिर गयी है कि धूमिल की भाषा में कहें तो यह प्रजा के साथ खिलवाड़ करने वाला तंत्र बन गयी है। पारंपरिक मूल्यों, नैतिकताओं और संयुक्त परिवारों का ढांचा तेजी से बिखर रहा है। पाश्चात्य और आधुनिक विचारों के अंधानुकरण से एक हाइब्रिड संस्कृति का जन्म हुआ है, जो पहचान के संकट को जन्म दे रही है।

बीज शब्द: इक्कीसवीं सदी, आर्थिक परिवेश, सामाजिक परिवेश, राजनीतिक परिवेश, सांस्कृतिक परिवेश।

उद्देश्य:

21वीं सदी के समकालीन समाज, संस्कृति, राजनीति, अर्थव्यवस्था और तकनीकी बदलावों का एक व्यापक और आलोचनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करना है। 21वीं सदी में तेजी से बदलते राजनीतिक तत्वों या सिद्धांतों को रेखांकित करना। डिजिटल युग, इंटरनेट, सोशल मीडिया द्वारा मानव जीवन और समाज में आए बदलावों का अध्ययन करना। पारंपरिक मूल्यों और आधुनिक/पाश्चात्य संस्कृति के टकराव तथा उनके समन्वय से उपजी नई हाइब्रिड संस्कृति का विश्लेषण करना। इस सदी की प्रमुख समस्याओं जैसे—बढ़ती उपभोक्तावादी संस्कृति, एकाकीपन, मानवीय संवेदनाओं में कमी और पर्यावरण संकट को उजागर करना। विकास की इस अंधी दौड़ में अमीर और गरीब के बीच बढ़ती खाई तथा बाज़ारवाद के प्रभाव की समीक्षा करना।

प्रस्तावना:

इक्कीसवीं सदी भूमंडलीकरण एवं वैश्वीकरण की सदी है। भूमंडलीकरण एक ऐसी

विचारधारा है जिसके मूल में बाजार, बाजारवाद और उपभोक्तावाद है। इसने एक ऐसी संस्कृति को जन्म दिया है जो अर्थ पर टिकी है। इसकी दृष्टि से पूरी दुनिया बाजार है। विश्व का हर मनुष्य उपभोक्ता है। इस मॉल संस्कृति का उद्देश्य मुनाफ़ा कमाना ही है। भूमंडलीकरण से प्रभावित राजनिति, धर्म, समाज, अर्थ तथा संस्कृति अपने नए अर्थ, रूप, समस्याओं के साथ उजागर हुए हैं। इससे साहित्य का प्रभावित होना स्वाभाविक है, क्योंकि अपने युगीन परिवेश के अनुकूल तथा प्रतिकूल तत्त्वों की अभिव्यक्ति समकालीन साहित्यिक धाराओं में सहज रूप से होती हैं। साहित्यकार की सजगता तथा संवेदनशीलता उसे अपने परिवेश के प्रति अलिप्त रहने नहीं देती। साहित्यकार सजग प्रहरी की तरह अपने समय के यथार्थ को समझता है। उचित-अनुचित का बोध कर समाज का दिशादर्शक बनता है, समाज को मार्गदर्शन करता है। इसी कारण किसी विशेष साहित्यकार, साहित्यिक प्रवृत्तियों तथा धाराओं का अध्ययन करने के लिए उस काल की प्रेरक परिस्थितियों को समझना आवश्यक है।

इक्कीसवीं सदी सांस्कृतिक संक्रमण की सदी रही है। इस संक्रमण के दौर मे जहाँ एक ओर संचार माध्यमों के गुणात्मक विकास ने विश्वग्राम की कल्पना को साकार किया, वहीं दूसरी ओर भौतिक साधनों के अंबार के बावजूद मनुष्य अकेला रहा। नैतिकता की परिभाषा के साथ उसके साधनों में भी बदलाव आया। इस सदी में राजनीति, धर्म, समाज, अर्थ, संस्कृति के क्षेत्र में घटित समस्याओं की गति तीव्र है। इससे साहित्य प्रभावित है। इस सदी का साहित्य अपने समय की समस्याओं, जीवन को प्रभावित करनेवाली राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय घटनाओं, भूमंडलीकरण और बाजारवाद से प्रभावित संस्कृति एवं सभ्यता को अपनी समस्त विशेषताओं के साथ अभिव्यक्त करता है। प्रस्तुत आलेख हम इक्कीसवीं सदी के हिंदी साहित्य को प्रभावित करनेवाली राजनीति, समाज, धर्म, अर्थ, शिक्षा, संस्कृति का अध्ययन करनेवाले हैं।

राजनीतिक परिवेश:

राजनीति याने वह नीति जिससे देश का शासन चलाया जाता है। देश की सर्वांगीण उन्नत्ति के हेतु संविधान के दायरे में रहकर कार्य किया जाता है। लोकतंत्र में राजनेताओं की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। वर्तमान समय राजनीतिक मूल्यों के अवमूल्यन का समय है। संविधान निर्माताओं ने जिस लोकतंत्रात्मक समाजवादी प्रणाली को अपनाया था, उसकी अपेक्षाओं तथा आकांक्षाओं पर वर्तमान राजनीतिक परिदृश्य खरा नहीं उतरा है। देश की आजादी तथा संविधान निर्माण के बाद भारतीय जनता को लोकतंत्र से मोह हुआ था कि हमें कम से कम रोटी, कपडा तथा मकान मिलेगा ही। लेकिन इक्कीसवीं सदी में भी यहाँ की जनता जीवनावश्यक सुविधाओं के लिए तरस रही हैं। विशेषता भारतीय राजनीति में आपातकाल (1975) के बाद भारी बदलाव आया। बहुदलीय राजनीति का उदय हुआ। दलबदल, स्वार्थ, भ्रष्टाचार तथा चाटुकारिता मानो नेता के चरित्र की विशेषताएँ ही सिद्ध हुई। गठबंधन की राजनीति में जनता या देश की उन्नत्ति से कई

ज्यादा विधायक, सांसद या पक्ष की उन्नत्ति को महत्त्व मिला। क्षेत्रीय दलों के लिए राजनीति एक व्यवसाय सिद्ध हुआ और वे गठबंधन के माध्यम से अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए इसका उपयोग करने लगे। सन 2004 से 2014 तक की डॉ. मनमोहन सिंह जी की गठबंधन की सरकार विधायक कार्यों से ज्यादा मित्र पक्षों के भ्रष्टाचार के मामलों के लिए आलोचना के केंद्र में रही। डॉ. सिंह द्वारा कई सारे ऐसे विधेयक संसद में पेश किए गए जिन्हें अपने निजी स्वार्थ के हेतु मित्र पक्षों द्वारा विरोध किया गया। सरकार चलाते समय देश तथा जनता की मर्जी से कई ज्यादा मित्र पक्षों की मर्जी संभालनीपडी। इसीके परिणामस्वरुप सन 2014में भारतीय जनता ने नरेंद्र मोदी जी की भाजपा और मित्र पक्ष की सरकार को जनादेश दे दिया। आज विपक्ष की भूमिका जनता निभा रही है।

अपराधीकरण, भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद, दलबदलना, लोगों को झूठे वादों तथा जमुलों में फँसाना वर्तमान राजनीति की विशेषताएँ बनी हुई हैं। आज चाहे किसी भी राज्य की विधानसभा हो या देश की संसद, इनमें कार्यरत 40% से अधिक विधायकों तथा सांसदों पर खून, बलात्कार, अपहरण, गुंडागर्दी जैसे गंभीर आरोपों के मामले दर्ज हैं। शायद वर्तमान राजनीतिक पार्टियाँ उम्मीदवार को टिकट देते समय उसके चरित्र तथा सामाजिक कार्य से ज्यादा उसकी गुंडागर्दी या धमकाने की क्षमता को ही महत्त्वपूर्ण मानती हो। वर्तमान राजनीति में बढ़ते अपराधीकरण पर टिप्पणी करते हुए किशन पटनायक लिखते हैं, “व्यापारियों, राजनेताओं और अपराधियों का गठबंधन हमारी राजनीति की मुख्य धारा बन गयी है। राजनीति ऐसे बिंदु पर पहुँच गई है जहाँ राजनीति अपराध को रोकने के बजाय अपराध का मुख्य आधार हो गई है।”1 यही वजह है कि आम आदमी राजनीति से दूर भागता है। सत्ता के विरोध में बोलने से कतराता है। क्योंकि उसने अनुभव किया है कि राजनेता और अपराधियों की मिली भगत से सत्ता के विरोध में बोलनेवालों को हमेशा के लिए चूप कराया जाता है। सत्ता प्राप्ति का एक मार्ग धर्म भी रहा है। धर्म में स्थित बाह्यांडबर, कर्मकांड, शोषण, अनैतिकता, गुरुडम आदि का विरोध करनेवाले समाजसेवी तथा पत्रकारों की दिन दहाडे गोलियाँ दागकर हत्या की गई। सरकार तथा पुलिस डॉ. दाभोलकर, कॉ.पानसरे, प्रा. कलबुर्गी, पत्रकार गौरी लंकेश आदि के हत्यारों को कई सालों से ढूंढ़ रही हैं। वहआज भी नाकाम रही है। इन हत्यारों को आम आदमी जानता है लेकिन तकनीकी तथा संचार साधनों से सिद्ध सरकार की एजेन्सियाँ उन हत्यारों तक नहीं पहुँच रही या पहुँचना नहीं चाहती हैं।

राजनीति और भ्रष्टाचार मानो एक सिक्के के दो पहलु हैं। बोफोर्स से शुरू हुई यह भ्रष्टाचार की श्रृंखला वर्तमान में चारा घोटाला, स्टैंप घोटाला, टू जी स्पेक्ट्रम घोटाला, कोल घोटाला, संसद में रिश्वत प्रकरण, मध्यान्ह भोजन घोटाला, आदर्श हाउसिंग घोटाला, भूचाल, अकाल निवारण के हेतु जमा निधि में घोटाला, सुरक्षा सामग्री की खरेदी में घोटाला, सरकारी बैंकों में घोटाला ....आदि रुकने का नाम नहीं ले रही है। यही वजह है कि

ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल इंडिया के 2008 ई में किए गए 180 देशों के सर्वे में भ्रष्ट देशों की सूचि हमारा स्थान 85 वाँ था। राजनीति में पार्टी द्वारा उसे ही टिकट दिया जाता है जो पैसा खर्च करने की क्षमता रखता है। और एक बार जब वह जीतता है तो अपने पाँच साल के कार्यकाल में दुगना-तिगना पैसा कमाता है। याने वर्तमान में जनता या देश की उन्नत्ति या प्रगति हो या न हों लेकिन विधायक या सांसद की प्रगतिमात्र अवश्य होती है। इस भ्रष्टाचार में राजनेता का साथ निभाता है हमारा प्रशासन। वह जनता के सेवक से कई ज्यादा राजनेता के हाथ के कठपुतले बनें हैं। सरकार द्वारा चलाई जा रही जनहितकारी योजनाएँ (मनरेगा, राष्ट्रीय ग्रामीण चिकित्सा योजना, मध्यान्ह भोजन, किसान कर्ज मुक्ति) भ्रष्टाचार के सबसे बडे स्रोत बने हुए हैं। भ्रष्टाचार का यह सारा पैसा विदेश में (स्विस बैंकों) में जमा है। वर्तमान मोदी सरकार ने अपने चुनावी घोषणापत्र में जनता से यह वादा किया था कि, स्विस बैंकों में जमा अरबों डॉलर का पैसा वापस लाकर प्रत्येक भारतीय नागरिक के खाते में जमा किया जाएगा। यह एक जुमला साबित हुआ। 'न खाऊँगा और न ही खाने दूँगा' की घोषणी भी जैसे चुनाव में वोटरों को लुभाने के लिए किया गया झूठा वादा ही रहा। चाहे पक्ष हो या विपक्ष आम आदमी को दिग्भ्रमित करने का अच्छा खासा नाटक भारतीय राजनीति में खेला जा रहा है।

वैश्वीकरण के इस दौर में यह बात भी सच है कि सरकार बडी लाचार बनी है। विश्व बैंक से बडी मात्रा में लिया गया कर्जा, विकसनशील राष्ट्रों के ऊपर लागू किए गए पर्यावरण तथा आर्थिक क्षेत्र के कडे नियम, बहुराष्ट्रीय कंपनियों की आर्थिक दादागिरी, आय का अधिकतर पैसा नागरिक सुविधाओं से कई ज्यादा आतंकवाद तथा प्राकृतिक आपदाओं के निवारण में खर्च करने से सरकारे बदलने पर भी मौजूदा परिस्थिति में कोई बदलाव नहीं आया है। अंतरराष्ट्रीय राजनीति दो गुटों में बंट रही है। अमरीका, रूस आदि ताकदें पेट्रोलजन्य इंधनों के लिए इस्लामिक देशों पर अपना कब्जा जमा रही है। दक्षिण कोरिया का तानाशाह तीसरे विश्वयुद्ध की तैयारी में है। भारत-पाकिस्तान के संबंधों में तनाव कायम है। जम्मू-कश्मीर में लगातार 40-45 दिन तक बंद जैसे हालात रहें हैं। सरकार विश्व में विकसित भारत की छवि निर्माण करने में जुटी है। देश की परराष्ट्र नीति अमरीका, रूस, जापान जैसी ताकतें तय कर रही है। तीसरी दुनिया के देशों को इन सत्ताओं के अधीन रहने के लिए अभिशप्त होना पड रहा है।

आर्थिक परिवेश:

इक्कीसवीं सदी के आर्थिक परिदृश्य की नींव पिछली सदी के अतिम दशक के प्रारंभिक वर्षो में डाली गयी, जब भारत ने 24 जुलाई, 1991 को उदारीकरण की नीति को अपनाया। इस नीति के परिणामस्वरूप भारत में बहुराष्ट्रीय कंपनियों का आगमन हुआ, जिनके निवेश से भारतीय अर्थव्यवस्था में सुधार आया। भारतीय कंपनियाँ भी विदेशों में अपनी धाक जमा बैठी तथा विदेशी बहुराष्ट्रीय कंपनियों के आगमन से भारतीय

अर्थव्यवस्था विश्व पटल पर अपनी पहचान बनाने में सफल रही। वर्तमान समय में भारतीय अर्थव्यवस्था विश्व की उभरती अर्थव्यवस्थाओं में से एक है। सूचना प्रौद्योगिकी, अवकाश संशोधन, आऊटसोर्सिंग, दवा, ऑटोमोबाइलआदि क्षेत्रों का विकास तथा वर्तमान सरकार की 'मेक इन इंडिया' नीति के परिणामस्वरूप भारत को उभरती अर्थव्यवस्था के रूप में देखा जा रहा है। इस अर्थव्यवस्था का एक दूसरा पहलु है जो कुछ अलग ही बताता है।

बाजारवाद, निजीकरण तथा भूमंडलीकरण के परिणामस्वरूप मोबाइल, लैपटॉप, टेलीविजन, इंटरनेट, कार आदि साधनों ने मध्यवर्ग के घर में कब की दस्तक दी है।जीडीपी मे बढ़ौतरी हुई हैं।सेन्सेक्स उंची उडाने भर रहा है।निर्यात में भी अभूतपूर्व बढोत्तरी दर्ज की हो रही है,लेकिन इसके साथ गरीबी रेखा तथा भूखमरी के ऑकड़ों में भी बढोत्तरी हुई है। एक ही देश में भारत और इंडिया नाम के दो देश रह रहे हैं। भारत में बेकारी, महँगाई, भूखमरी, गरीबी आज भी बरकरार है। इंडिया मात्र चमक रहा है। भारत का 30% तबका आज भी दो वक्त की रोटी के लिए दर दर की ठोंकरे खा रहा है। बहुत बडी आबादी भूखे मरने को अभिशप्त है। विड़ंबना ऐसी है कि दुनिया के सबसे अमीर सौ लोगों की सूची में भारत के बीस से ज्यादा लोग हैं। करोड़ों तथा अरबपतियों की संख्या दिनो-दिन बढ़ रही है। फोर्ब्स पत्रिका के अनुसार भारत में प्रतिवर्ष 10,000 नए अरबपति बन रहे हैं। इक्कीसवीं सदी की सच्चाई यही है कि, अमीरी और गरीबी के बीच की खाई दिनों-दिन बढ़ रही है।

जहाँ एक ओर भारत उभरती हुई अर्थव्यवस्था के रूप में विश्व में अपनी पहचान बना रहा है, वहीं दूसरी ओर इसके सामने कई चुनौतियाँ खडी हैं। भूमंडलीकरण, निजीकरण तथा बाजारवाद ने विश्व अर्थव्यवस्था को अपनी चपेट में लिया है। वर्तमान में दुनिया के किसी भी देश की अर्थव्यवस्था की गति केवल उस देश की आर्थिक उन्नत्ति पर निर्भर नहीं होगी, बल्कि कई सारे अंतरराष्ट्रीय पहलुओं से इसे प्रभावित होना पड रहा है। उदाहरणार्थ, भारत यह कृषिप्रधान देश है। यहाँ अच्छी बारिश होकर बडी मात्रा में फसल या अनाज पैदा होने पर भी अंतरराष्ट्रीय स्तर पर पेट्रोलियम पदार्थों के दामों में बढोत्तरी हुई तो भी हमारे यहाँ महँगाई कायम रहती है। विश्व में कहीं भी युद्ध घटित होता है या होने के असार नजर आते ही पूरे विश्व में महँगाई बढ़ती है। अमरीका या रूस में किस पार्टी की सरकार सत्ता स्थापित करेगी इसपर हमारे सेन्सेक्स में उछाल या गिरावट दर्ज की जाती है। स्पष्ट है कि अर्थव्यवस्था की गति अंतरराष्ट्रीय बाजार तय करता है। बावजूद इसके पर्यावरण में आए भारी बदलावों के साथ आतंकवाद भी विश्व अर्थव्यवस्था को प्रभावित कर रहे हैं। भारत जैसे कृषिप्रधान देश में तो अकाल और सूखे की मार तो जैसे कायम बनी हुई है। किसान आत्महत्या गंभीर प्रश्न बना हुआ है। देश के सर्वाधिक समृद्ध कहे जानेवाले पंजाब में कर्ज में डूबे किसानों की आत्महत्या के निरंतर आते समाचार, महाराष्ट्र जैसे प्रगत राज्य के मराठवाडा

और विदर्भ के इलाकों के किसानों की आत्महत्याएँ गरीबी तथा बेकारी का ही परिणाम है। इक्कीसवीं सदी का सबसेबडा संकट बेरोजगारी रहा है।

2007-08 दुनिया की अर्थव्यवस्था पर अमरीका के डॉलर का प्रभाव था। लेकिन 2008 में ही अमरीका की अर्थव्यवस्था बूरी तरह से धाराशायी हुई, परिणामस्वरूप विश्व में आर्थिक मंदी की लहर आयी। अमरीका की बडी कंपनियाँ, बैंक दिवालिया हो गए। इससे विश्व अर्थव्यवस्था के साथ भारतीय अर्थव्यवस्था प्रभावित हुई। वित्तीय संकट से उभरने के लिए सरकार को कई सारी जनहितकारी योजनाओं को बंद कर बैंकों को सहायता राशि देनी पडी। बैंक तथा बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने कर्मचारियों की छँटनी की, नौकरियाँ छूटने का सिलसिला यहीं से शुरू हुआ। वर्ष 2012-13 भारत का विकास दर भी 7.5% से घटकर 5% रह गया। परिणामस्वरूप बेकारी, गरीबी तथा महँगाई में बढोतरी हुई। भारत युवाओं का देश है। इस देश की 60% आबादी युवा है।2 ऐसे में इन युवाओंको यदि काम नहीं दिया गया तो वे किसी गलत रास्ते को अपना सकते हैं। परिणामस्वरूप चोरी, गुंडागर्दी, डकैती, हत्या, व्यसनाधिनता जैसी समस्याओं में इजाफा हो रहा है। मोदी सरकार ने भ्रष्टाचार को रोकने तथा काला धन ढूंढ़ने के हेतु नोटबंदी का फैसला लिया। आज तक कितना काला धन मिला यह तो पता नहीं चला लेकिन इससे छोटे कारोबार तथा किसान मात्र पूरी तरह से धाराशायी हुए। नौकरियाँ चली गयी। आज तक अर्थव्यवस्था में सुधार नहीं आया है।

भारतीय कृषि व्यवस्था मौसम के साथ अंतरराष्ट्रीय बाजार तथा राजनेताओं की इच्छाशक्ति पर निर्भर है। पिछले कई सालों से हम अनुभव कर रहे हैं कि जीवनावश्यक वस्तुओं के दामों में बढोतरी हो रही है। महँगाई की मात्रा हमेशा ऊपर ही रही है। दाल, चीनी, प्यास आदि जीवनाश्यक वस्तुओं के दाम अचानक से कम होते हैं, बढ़ते हैं। पिछले तीन सालों से अरहर के दामों ने आसमान को छुआ था। किसानों ने भी इसी साल भारी मात्रा में अरहर की खेती की थी। फसल अच्छी आयी थी। अचानक दाम गिर गए। किसानों को खेत में ही फसल छोड़नी पडी। किसानों की दाल खरीदने में सरकार नाकाम रही। कम अधिक मात्रा में गन्ना, धान, प्याज, लहसुन आदि के बारे में यही अनुभव है।

सामाजिक परिवेश:

हम जानते हैं कि, परिवार से लेकर विश्व तक के मानव समूह को समाज के विविध रूपों में अंकित किया गया है। विश्व के अन्य समाजों की तुलना में भारतीय समाज अपनी अलग विशेषताओं के लिए पहचाना जाता है। प्रारंभिक या प्राचीन काल में भारतीय समाज रचना का बँटवारा वर्णों में तथा बाद में जातियों में किया गया। समय-समय पर इसमें प्रचलित अनिष्ट परंपराओं, सभ्यताओं की आलोचना होती रही। अंग्रेजी शिक्षा तथा सत्ता के परिणामस्वरूप भारतीय समाजव्यवस्था में भारी मात्रा में बदलाव आए। सामाजिक परिवर्तन की चेतना जाग्रत हुई। 1947 में देश आजाद होकर 1950 में संविधान की घोषणा की गई। यहाँ के हर

नागरिक को राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, संस्कृतिक जीवन में स्वातंत्र्य, समता, बंधुता के साथ धर्मनिरपेक्षता जैसे बुनियादी तत्वों की प्राप्ति हुई। छुआछूत जैसी अमानवीय प्रथाओं को खत्म करने संबंधी कानून में कडे प्रावधान रखे गए। आजादी के बाद के देशी शासकों ने जनता का मोहभंग किया। जनता द्वारा भ्रष्ट राजनेताओं का अनुकरण किया गया। परिणामस्वरूप समाज में स्वार्थ, आत्मकेंद्रियता, संकुचितता के साथ भ्रष्टाचार का बोलबाला बढा। नए मध्यवर्ग का निर्माण हुआ। पूँजीवादी तथा अमीर लोग भारतीय संस्कृति को दकियानूसी घोषित कर पाश्चात्य संस्कृति के अनुकरण में जुटे रहें। गरीबी, बेकारी, महँगाई से जनता त्रस्त रही। 1980 के बाद का भारतीय समाज उपभोक्तावाद, बाजारवाद तथा भूमंडलीकरण से प्रभावित रहा।

यह समाज मानवीय मूल्यों तथा आदर्शों के स्थान पर विकृत तथा स्तरहीन सभ्यता को अपनाने पर बल देता नजर आ रहा है। पैसों तथा भौतिक सुविधाओं के पीछे पड़े इस युग के मनुष्य कीं सूखती हुई संवेदना समय और समाज के लिए एक चुनौती बनी है। समाज की सबसे छोटी इकाई के रूप में मनुष्य की संवेदना तथा भावना का जितना क्षरण इस युग में हुआ, उतना संभवता इतिहास में कभी नहीं हुआ। स्वार्थी तथा आत्मकेंद्रीत मनुष्य ने अपने सभी रिश्तों तथा संबंधों को अर्थ के तराजू पर तोलना आरंभ किया। जो संबंध कभी आत्मीयता तथा भावना के आधार पर निर्माण होते थे, आज वे लाभ-हानि के आधार पर बनने लगे। ऐसे रिश्तों में चाहे अपनेपन या भाईचारे का अभाव हो लेकिन उससे यदि कोई अन्य लाभ मिलता हो तो इन्हें बनाया जा रहा है। भौतिक सुविधाओं के पीछे पड़े मनुष्य के जीवन में तनाव, अकेलेपन के साथ-साथ कई सारी बीमारियों ने प्रवेश किया है। संयुक्त परिवार टूटकर एकल परिवार बनें और आज तो 'लिव इन रिलेशनशिप' का जमाना आया है। इसने तो परिवार व्यवस्था को पूरी तरह से तहस-नहस कर दिया है। वर्तमान पीढ़ी विवाह तथा परिवार में विश्वास न कर उन्मुक्त जीवन को ज्यादा महत्त्व दे रही हैं। भौतिक सुविधाओं के आदी बनें पति-पत्नी दोनों नौकरी करने के लिए अभिशप्त हैं। उन्हें बच्चे नहीं चाहिए। आज कल तो माने 'नो किडस् डबल डिंक्स' का जमाना आया है।

आर्थिक उन्नत्ति की चाह तथा भोग-विलास के साधनों को पाने की स्पर्धा ने व्यक्ति की संवेदना को ही मार दिया है। बेटा संपत्ति के हेतु पिता की हत्या करता है। बाप बेटी का बलात्कार करता पाया जाता है। वर्तमान में समाचार पत्र को पढना मानो हत्या, खून, बलात्कार, रिश्वतखोरी, चोरी, डकैती को पढना है। सड़क हादसे में घायल व्यक्ति को अस्पताल में ले जाने के बदले वहाँ सेल्फी निकालना, डूबते हुए को बचाने के बदले मोबाइल पर उसका रिकॉर्डिंग करना या तडपते व्यक्ति को उसी हालत में छोड़कर अपने काम में लग जाना जैसे उदाहरण सूखती हुई संवेदना को ही दर्शाते हैं।

आज त्याग, सेवा, आदर, सत्य, नैतिकता, सदाचरण, मानवीयता, आदि तत्त्व मानो किताबों में पढने तक ही सीमित रहे हैं। परिवार के टूटने से बूढ़े

माँ-बाप तो मानो वृद्धाश्रमों में रखी जानेवाली वस्तुएँ सिद्ध हो रहे हैं। यदि वे पेन्शनधारी हैं तभी घर में जगह प्राप्त कर सकते हैं। परिवार के पति-पत्नी दोनों नौकरी करते हैं तो बच्चों की देखभाल होस्टल या केअर सेंटरों पर छोडी जाती है। माँ-बाप दिन रात केवल भौतिक सुविधाओं की प्राप्ति के हेतु पैसे जुटाने में जुड़े हुए हैं। कभी भारतीय संस्कृति को सुरक्षित रखनेवाले गाँव भी शहरों की भाँति अपनी मूल पहचान खोकर शहरी संस्कृति का अंधानुकरण करते देखे गए हैं। ऐसे में वहाँ भी परिवार व्यवस्था चरमरा गयी है।

इस व्यक्तिगत तथा पारिवारिक बिखराव के साथ इक्कीसवीं सदी के समाज में जातीयता, धर्मांधता, प्रांतवाद, अनिष्टपरंपराओं, बाह्यांडबर, स्त्री-पुरूष विषमता, पर्यावरण प्रदूषण, आतंकवाद, भ्रष्टाचार, सांप्रदायिकता आदि समस्याएँ बनी हुई हैं। भले ही संविधान ने धर्मनिरपेक्षता तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण इस तत्त्व को रेखांकित किया हो फिर भी सूचना तकनीकी तथा इंटरनेट के इस युग में आज भी जातीयता, धर्मांधता का बोलबाला है। आज भी व्यक्तिगत स्वार्थ के हेतु जातीय हिंसाएँ की जा रही हैं। आज भी हिंदू-मुसलमान एक-दूसरे के प्रति अविश्वास की भावना से देखते हैं। आज भी दलितों पर अन्याय-अत्याचार जारी हैं। वे अपने अस्तित्त्व के लिए संघर्ष कर रहे हैं। तमाम कोशिशों के बावजूद आज भी अनिष्ट रूढियाँ प्रचलित हैं। कर्मकांड हो रहे हैं। जातीय तथा वर्गीय भेदभाव इस सदी की त्रासदी है। भ्रष्टाचार मानो शिष्टाचार सिद्ध हो रहा है। पैसे या सत्ता प्राप्ति के साधनों की पवित्रता को नकारा जा रहा है। वैयक्तिक स्वार्थ भ्रष्टाचार को बढ़ावा दे रहा है। अमीरी और गरीबी के बीच का फासला बढ़ता जा रहा है। पूँजी के सारे साधन अमीरों के हाथ में हैं। सत्ता की चावी भी पूँजीपतियों, अमीरों तथा बडे व्यापारियों के हाथ में है। इस देश में गरीब का मूल्य केवल वोट तक सीमित रहा है। वह अपना सारा वक्त दो वक्त की रोटी जुटाने में खर्च करता है। वह शहर की गंदी बस्ती में रहने के लिए अभिशप्त है। उसका शरीर मानो बीमारियों का घर बना है। आज भी वह आवश्यक सुविधाओं से वंचित है।

सांस्कृतिक परिवेश:

इक्कीसवी सदी का युगीन परिदृश्य सांस्कृतिक स्तर पर संक्रमण के दौरे से गुजर रहा है। भूमंडलीकरण, निजीकरण तथा बाजारवाद ने सबसे अधिक संस्कृति को प्रभावित किया है। बीसवीं सदी की शुरुवात में अंग्रेजी सत्ता, शिक्षा तथा इसाई मिशनरियों के संपर्क से भारतीयों में सांस्कृतिक दृष्टि से नवजागरण की लहर दौडी थी। यह एक सांस्कृतिक आंदोलन था जिसने बौद्धिक, साहित्यिक, कलात्मक दृष्टि से भारतीयों के मानसिक क्षितिज को व्यापक बनाया था। धर्म तथा संस्कृति में परंपरा से चली आ रही अनिष्ट रूढ़ियो के साथ धर्मांधता, कर्मकांड, छुआछूत आदि के विरोध में आवाज उठने लगी। नृत्य, नाट्य, संगीत, शिल्प, चित्रकला, मूर्तिकला आदि के प्रति मध्यवर्ग के साथ बुद्धिजीवी वर्ग बडी मात्रा में जुड़ गया। आजादी के बाद संस्कृति संवर्धन के हेतु भारत सरकार द्वारा कई संस्थाओं का निर्माण किया। स्वातंत्र्योत्तर युग में

शिक्षा का प्रसार, संपर्क के सुलभ साधनों तथा वैज्ञानिक जीवन पद्धति ने संस्कृतियों के आदान-प्रदान को बढ़ावा दिया। 1980 के बाद तो भूमंडलीकरण, बाजारवाद ने एक ऐसी नई तथा संकरित संस्कृति को जन्म दिया जिसकी नींव 'अर्थ' पर टिकी है। इसे 'उपभोक्तावादी' तथा 'ब्रांडिंग संस्कृति' के नाम से जाना जाता है, जिसका उदय अमरीका में हुआ।

इस नई तथा भौतिकवादी संस्कृति में मनुष्य केवल एक ग्राहक है। बहुराष्ट्रीय तथा मल्टीनेशनल कंपनियों का उद्देश्य केवल और केवल मुनाफ़ा कमाना है। उपभोक्तावाद ने व्यक्ति को कभी न समाप्त होनेवाली दौड़ में धकेल दिया है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने नए-नए उत्पाद के साथ नई-नई ऊँची नौकरियाँ सामने रखी हैं, जिसे पाने की स्पर्धा चल रही है। बडे पैकेज की प्राप्ति के हेतु हम चौबिसों घंटे कार्य में लगे हैं। बाजारवाद का सबसे प्रमुख आधार सपने और लालसाएँ बेचना है। इन बडी कंपनियों में निरंतर यह शोध चलता रहता है कि आगामी दस सालों में अमुक वस्तु, उत्पाद, औषधि आदि के लिए किस प्रकार 'माँग' पैदा की जा सकेगी। उदाहरणार्थ, पीज्जा, बर्गर आदि फास्टफूड मोटापा बढाते हैं, इसे घटाने के लिए औषधि, पेय, टॉनिक के साथ जिम या व्यायाम की मशीनें आदि का निर्माण किया गया। व्यक्ति इसे खरीदे,इसलिए उसके मन में विज्ञापन द्वारा प्रबल इच्छा, लालसा निर्माण की जाती है। उसकी नकद देकर खरीदने की क्षमता न होनेपर उसे किश्तों/ऋण की सुविधा उपलब्ध करायी जाती है। बैंकों द्वारा क्रेडिट कार्ड तथा डेबीट कार्ड बडी सहजता से उपलब्ध कराकर उसे वस्तु खरीदने पर मजबूर किया जाता है। इसमें मीडिया जगत, टी.वी. तथा समाचार-पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित विज्ञापनों की भूमिका कारगर है। हम सुबह से शाम तक क्या खाएँ, क्या पहने, कहाँ घूमने जाए, क्या खेले, क्या पढ़ें, आदि बातें तो विज्ञापन ही तय करता है। हमारे घरों में पकाए जानेवाले पारंपरिक व्यंजन तो मानो गायब ही हुए हैं। अब तो चुटकी में तैयार होनेवाली मैगी, नुडल्स, ऑर्डर देकर मिलनेवाला पिज्जा या बर्गर ही हमारे खानपान के प्रमुख स्रोत बने हैं। बच्चे दूध से ज्यादा पेप्सी, कोक या अन्य शीत पेय माँगते हैं। हमारा पहनावा पूरी तरह से बदल गया है। खान-पान, पहनावे की दृष्टि से मानो हमारी विविधता ही खत्म हुई है।

विज्ञापन और टी.वी. संस्कृति ने भारतीय समाज में अश्लीलता की नई अवधारणाएँ और नई नैतिकता विकसित की है। आज श्लील-अश्लील के बीच की दीवारें गिर चुकी हैं। फिल्मों में दिखाए जानेवाले चुंबन और रति मुद्राएँ तो आम बात बनी है। भारतीयों का अपने त्यौहारों के प्रति आकर्षण कम हो रहा है। हमने भौतिक समृद्धि तथा भोगवाद को ही जीवन का असली आनंद मान लिया है। मध्यवर्गीय माता-पिता यही चाहते हैं कि उसकी संतान बडी नौकरी हेतु किसी प्रकार अमरीका, कनाडा या इंग्लैंड चली जाए। किसान अपनी जमीनें बेचकर बच्चों को उच्च शिक्षा के लिए विदेश भेज रहे हैं। घर में अकेले रहे बूढ़े माँ-बाप वृद्ध गृहों, आश्रमों या वरिष्ठ नागरिक सेवाओं का आश्रय लेते हैं। अकेलेपन से लड रहे हैं। व्यक्ति की प्रतिष्ठा उसकी

मानवीयता से कई ज्यादा घर में मौजूद भौतिक साधनों की अधिकता पर तय की जा रही है।

भूमंडलीकरण से प्रेरित सूचना क्रांति के इस युग में भाषाओं के सामने मानो अस्तित्त्व का संकट खड़ा हुआ है। इंटरनेट, कम्प्यूटर तथा संचार माध्यमों की प्रमुख भाषा के रूप में अंग्रेजी का ही बोलबाला रहा है। इंटरनेट, विज्ञापन तथा सिनेमा ने भारतीय भाषाओं के स्वरूप तथा प्रकृति में तेजी से परिवर्तन किये हैं। मोबाइल में तो टाइपिंग की भाषा हिंदी है लेकिन उसे रोमन लिपि में लिखा जा रहा है। भाषाओं का बडी तेजी से अंग्रेजीकरण हो रहा है। नव मध्यवर्ग की दृष्टि से अंग्रेजी भाषा में बातचित करना सभ्यता का लक्षण बना है। इसी कारण देश के महानगरों में ही नहीं तो देहातों में भी अंग्रेजी स्कूल कुकुरमुत्तों की भाँति उग रहे हैं। बच्चा घर तथा समाज में मातृभाषा में बोलचाल करता है लेकिन स्कूल में विदेशी/नई भाषा को सुनता है। जीवन के विविध क्षेत्रों से संबंधित संकल्पनाओं को बिना समझे केवल रटता रहता है। माँ-बाप ने मान लिया हैं कि इस युग के लिए काबिल बनना है तो अंग्रेजी शिक्षा या अंग्रेजी का ज्ञान आवश्यक है। अपनी भाषा तथा संस्कृति को दकियानूसी मानने की यह प्रवृत्ति इक्कीसवीं सदी के भारतीय समाज की विशेषता सिद्ध हो रही है।

भाषा के समान ही संगीत, नृत्य, नाट्य, शिल्प, सिनेमा आदि कलाएँ भी संक्रमण के दौर से गुजर रही है। साहित्यकार भूमंडलीकृत स्थितियों से विचलित होकर इसकी यथार्थ अभिव्यक्ति में जुटा है। कविता नए बिंबों, प्रतीकों तथा मिथकों द्वारा इसे अभिव्यक्त कर रही है। अनामिका, कात्यायनी, एकांत श्रीवास्तव, कुमार अंबुज, मदन कश्यप, देवीप्रसाद मिश्र आदि कवियों ने भूमंडलीकरण की प्रक्रिया में शेष होती मानवता की नियति पर सशक्त कविताएँ रची हैं। कहानी, उपन्यास, नाटक आदि गद्य विधाओं ने भूमंडलीकरण से पैदा हुई आर्थिक विषमता, अमीर-गरीब के बीच बढ़ती खाई, किसानों की आत्महत्याओं का न रुकनेवाला सिलिसला, पैसे की दौड़ और आकाशचुंबी सपनों का संसार आदि की चिंता को वाणी दी है। इसमें प्रमुख रूप से उदयप्रकाश, मनोहर श्याम जोशी, संजीव, मृणाल पाण्डेय, विष्णु नागर, सुनीता जैन, मनीषा कुलश्रेषठ, रमेश उपाध्याय आदि का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

निष्कर्ष:

इक्कीसवीं सदी बदलावों की सदी है। इस सदी ने मानव और समाज जीवन को तेजी के साथ बदला है। इस बदलाव में दोनों पक्ष शामिल है।एक सकारात्मक और दूसरा नकारात्मक। सकारात्मक पक्ष में पैसो की उपलब्धता और हर व्यक्ति के जीवन में आये भौतिक सुविधाओं का उल्लेख कर पाएंगे। लेकिन यही सकारात्मक चीजों का प्रयोग जब अति की मात्रा में होने लगता है तो इनक नकारात्मक पहलू नजर आता है।इसके केंद्र में तकनीकी का विस्तार और मानव का इसके ऊपर निर्भर होना है। इस सदी के परिवेश पर दृष्टि डाले तो साफ नजर आता है कि इस सदी का मानव जीवन तनावभरा,

आदर्शों की प्रताड़ना कराता हुआ और अकेलेपन और सामाजिकता से टूटता हुआ नजर आता है।

सन्दर्भ सूचि:

1. पटनायक किशन, भारतीय राजनीति पर एक दृष्टि:गतिरोध, संभावना और चुनौतियाँ,राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2006 पृष्ठ 163
2. https://www.drishtiias.com/images/uploads/1596015156_Quick-Book-Indian-Economy.pdf
3. शर्मा पूनम, इक्कीसवीं सदी के हिंदी साहित्य में चित्रित विविध विमर्श, नेशन प्रकाशन, कानपुर संस्करण 2021